DAV/28/2021/2000

।। ओ ३ म् ।।
तमसो मा ज्योतिर्गमय

D. B. F. Dayanand College of Arts and Science, Solapur

NAAC-Reaccrediated 'B++' Grade • ISO 9001 : 2015 Certified
UGC Status as a College With Potential For Excellence (CPE) • Solapur University "Best College Award - 2017"
Maharshi Dayanand Saraswati Chowk, Raviwar Peth, Solapur-413002 (Maharashtra)
Website : http:// www.dayanandsolapur.org Email : dayasolapur@gmail.com, spr_dayartsc@bsnl.in,
Phone : 0217-2323193 Fax : 0217-2728900 spr_dayartsc@live.com,

Estd. : 1940

Principal : **Prof. Dr. Vijaykumar P. Ubale** - 9423535445

।। ओ३म् ।।
तमसोमां ज्योतिर्गमय

दयानंद शिक्षण संस्था, सोलापुर

नैतिक शिक्षा प्रतियोगिता परीक्षा

सन 2020–2021

दि. 16.02.2021

नैतिक शिक्षा प्रतियोगिता परीक्षा (धर्मशिक्षा) में जो छात्र सम्मिलित होना चाहते हैं, वे हिंदी विभाग (वरिष्ठ) में अपना नाम दर्ज करें।

प्रधानाचार्य

DAV/28/2021/3000

॥ ओ ३ म् ॥
तमसो मा ज्योतिर्गमय

D. B. F. Dayanand College of Arts and Science, Solapur

NAAC-Reaccrediated 'B++' Grade • ISO 9001 : 2015 Certified
UGC Status as a College With Potential For Excellence (CPE) • Solapur University "Best College Award - 2017"
Maharshi Dayanand Saraswati Chowk, Raviwar Peth, Solapur-413002 (Maharashtra)
Website : http:// www.dayanandsolapur.org Email : dayasolapur@gmail.com, spr_dayartsc@bsnl.in,
Phone : 0217-2323193 Fax : 0217-2728900 spr_dayartsc@live.com,

Estd. : 1940

Principal : **Prof. Dr. Vijaykumar P. Ubale** - 9423535445

॥ ओ३म् ॥
तमसोमां ज्योतिर्गमय

दयानंद शिक्षण संस्था, सोलापुर

नैतिक शिक्षा प्रतियोगिता परीक्षा

सन 2020–2021

दि. 23.02.2021

नैतिक शिक्षा प्रतियोगिता परीक्षा (धर्मशिक्षा) के उपलक्ष्य में होम असाइनमेंट का आयोजन किया जा रहा है। नैतिक शिक्षा प्रतियोगिता परीक्षा में प्रवेशित छात्रों को असाइनमेंट लिखकर जल्द से जल्द ऑनलाईन ही भेजना है। अन्य आवश्यक जानकारी हेतु हिंदी विभाग (वरिष्ठ) से संपर्क करें।

प्रधानाचार्य

महाविद्यालय का नाम :- डि बी एफ दयानंद कॉलेज ऑफ आर्ट्स अँन्ड सायन्स सोलापूर.

नाम : राहुल अंबादास गुजराथी.

कक्षा : B.A. 3

नैतिक परीक्षा.

वर्ष 2020 - 2021.

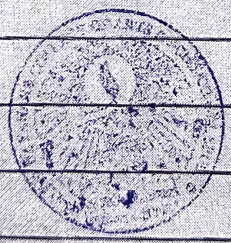

दण्ड की सामान्य व्यवस्था

(क) महत्व एवं आवश्यकता

मनुस्मृति के अनुसार दण्ड ही बड़ा पुरुष प्रधान है। चार वर्ण और राजा है। वही सबका शासन करने एवं न्याय करने वाला जामिन नहीं है। दण्ड ही सारी प्रजा पर शासक के रूप में शासन करता है। सबकी रक्षा एवं जागृति दण्ड ही करता है। इस कारण दण्ड को विद्वान धर्म समझते हैं। विचार से दिया गया दण्ड प्रजा प्रसन्न होती है, लेकिन बिना सोचे जो दण्ड दिया जाता है उससे सब प्रकार का विनाश हो जाता है। यदि दण्ड ठीक नहीं होता है तो सभी वर्ण दूषित हो जाते हैं, सभी मर्यादाएँ नष्ट हो जायेगी और सभी लोगों को इसका कोपभाजन होने पड़ेगा। जहाँ पर काला रंग लाल आँखोंवाला तथा पाप विनाशक दण्ड घूमता रहता है दण्ड का संचालक नेता यदि निष्पक्ष और सज्जन होने पर वहाँ की प्रजा मोह में नहीं पड़ती है। वह धर्म अर्थ एवं काम की से बढ़ता है जो विषय, लंपट, कुटिल ईर्ष्यालु क्षुद्र एवं नीच होता है उसे दण्ड से मारा जाता है।

राजा को दण्ड के प्रयोग करने योग्य कहा जाता है। दण्ड में महान तेज है। उसे अविद्वान और अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता है। असहाय मुर्ख लोभी बुद्धिहीन और विषयासक्त है वे दण्ड का न्याय पूर्वक प्रयोग नहीं कर सकते है। बुद्धिमान प्रामाणिक और सत्य के प्रतीक। नीतिशास्त्र के अनुसार आचरण करनेवाला ऐसा श्रेष्ठ पुरुष ही दण्ड का प्रयोग करने के लिए योग्य है।

(ख) दण्ड की सामान्य व्यवस्था :-

दण्ड की व्यवस्था देश, काल, पुरुष और अपराध आदि को ध्यान में रखकर करनी चाहिए। जिससे अन्याय से दण्ड देने के कारण लोग और परलोक इन दोनों व हानि होती है।

दण्ड के दस स्थान माने गये हैं : कामेन्द्रिय
उदर जिव्हा हाथ पैर आँख नाक कान धन और शरीर
अर्थात् सामान्य अर्थ, [illegible] दण्ड देना है तो
किसी को कम अपराध को दुगुना, तिगुना और
चौगुना भी दण्ड दिया जा सकता है। वाणी के
दण्ड के अंतर्गत निंदा और धिक्कार अर्थात् तूने
ऐसा बुरा काम क्यों किया इस पर भी दण्ड दिया
जाता है। धनदण्ड अर्थात् जुर्माना करना वध : कोड़े से
मारना, अंगभंग, सिर काटना आदि। और जिस अंग
से मनुष्य के विरुद्ध काम करता उस अंग को
सब मनुष्यों की शिक्षा के लिए राजा छेद कर सकता है।

साधारण मनुष्य पर जिस अपराध के लिए
एक रुपया दण्ड होता है, वहीं राजा को उसी
अपराध के लिए हजार रुपये दण्ड होना है चाहिए
राजा के दिवान को आठ सौ रुपये उससे कम
महत्व के व्यक्ति को न्यून से न्यून रुपयों का
दण्ड होना चाहिए। चपरासी को सबसे कनिष्ठ माना
जाता है। लेकीन उसे साधारण मनुष्य से आठ
गुणा दण्ड होना चाहिए। गुरु, पिता, पुत्र, ब्राह्मण
एवं शास्त्रवा आदि कोई भी हो उन्हे बलात्कार जैसे
संगीन अपराध करने पर मृत्युदंड होना चाहिए जो स्त्री
जाति एवं गुण के कारण अहंकार से पति को
छोड अन्य से व्याभिचार करती है, उसे स्त्री पुरुषों
के सामने कुत्ते से कटवाकर मार डाले। अपनी पति
के अलावा दुसरी स्त्री से संबंध रखनेवाले को तपे
हुए लोहे के पलंग पर सुलाकर मार डालना चाहिए।
राजा या रानी के ऐसा अपराध करने पर उन्हे
राजसभा इसी प्रकार दण्डित करे।

दयानंद कला व शास्त्र महाविद्यालय
किरण नागेश थुल्लम
नैतिक परीक्षा 2020-21
BA - III

प्रथम खंड - सर्वप्रथम मानवशरीर एवं उसमे स्थित आध्यात्मिक व्यक्तियों के प्रदाता एवं प्रेरक के विषय में जिज्ञासा उठाई गई है। उसमे ब्रह्म को वह संपूर्ण सृष्टि और तत्संबद्ध गतिविधियों का एकमात्र नियामक और चालक बताया गया.

द्वितीय खंड - जिज्ञासु को सृष्टि का रचयिता और चालक कौन है? उसका महत्व क्या है? उसके स्वरूप को सही रूप मे जानना कठिन है। परंतु इसी जीवन में उसके वास्तविक रूप को जान लेना नितांत आवश्यक है। अन्यथा मानव इस जीवन के समाप्त होने के बाद भी 'अमृत' या 'अमर' नहीं हो सकेगा। इसे जान लेने के बाद जन्म-मरण की चिंता से छूट कर अपने को अमर अनुभव कर सकता है, "दैहिक मृत्यु के बाद" 'अमर' बन भी सकता है।

तीसरे खंड - देवताओं द्वारा उसे जानने के प्रयत्न की चर्चा की गई है। 'ब्रह्म' को 'यक्ष' के रूप में प्रस्तुत करके उसकी वास्तविकता के विषय में देवों को अनभिज्ञ बताया गया - देवगण अपने में सर्वप्रमुख और सर्वशक्तिमान तीन प्रतिनिधि देवों की उत्तर पाने के लिए नियुक्त 'अग्नि' और 'वायु' पहचानने में असमर्थ - 'इंद्र' को भी इसे जानने के लिए

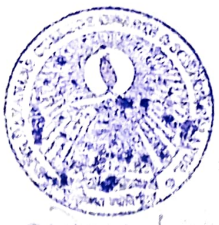

शक्ति प्रदर्शन की अपेक्षा 'आत्मा और बुद्धि' का सहारा
लेना पड़ता है। वह अध्यात्म विद्यारूपी हेमवती नाम की स्त्री
के पास जाकर इस प्रश्न को रखती है।

चतुर्थ खंड - वह बताती है 'अग्नि और वायु जैसे प्रबल
बल अभिमानी देवताओं की शक्ति से भी
अत्यधिक शक्तिवाला वह कोई अन्य नहीं, ब्रह्म ही है।

प्रथम और दूसरे खंड - गुरु शिष्य के बीच वार्तालाप के रूप में -
तीसरे और चौथे खंड - ज्ञान की वास्तविक अनुभूति का रहस्य ही
रूप माध्यम से बताया - पहले खंड में - सम्पूर्ण
सृष्टि का रचयिता और नियन्ता वही है, हमारे व्यक्तिगत जीवन को
भी विधाता और नियामक वही ब्रह्म कहा जाता है। दूसरा खंड -
'ब्रह्म' संबंधी ज्ञान की दुर्विज्ञेयता या कठिनता पर बल दिया।
केवल 'आत्मा' ही इस ज्ञान को पाने और समझने में समर्थ
हो सकता है। इस से जीवन और जगत् का नियमन और
संचालन करनेवाले तत्व को जानकर उसकी वास्तविकता को
जीवन में अनुभव करने का यत्न करना चाहिए। 'ज्ञान' की सीमा
से बढ़कर 'अनुभव' की निश्चितता को भी पाने का यत्न करना
चाहिए - तत्व का आत्म परिचय और अनुभूति आवश्यक
'अनुभूति' अपनी 'अशक्ति' और 'सीमाओं' को पहचाने बिना
नहीं।

आत्मज्ञान के रहस्य को तृतीय खंड में बताया -
'अग्नि' और 'वायु' क्रमशः 'भौतिक' और 'दैविक' शक्तियों
के प्रतीक - ब्रह्म को जानने का अभिमान करके आत्मा
ब्रह्म की महिमा को अपनी महत्ता मानता है। स्वयं को ब्रह्म
का अंश मानकर भी अपनी शक्ति पर गर्वित हो उठता है - ब्रह्म
की वास्तविकता पर विश्वास नहीं यही अग्नि, वायु की असफलता
के माध्यम से बताई - आत्मा अपनी इंद्रियाश्रित भौतिक शक्तियों
की असफलता स्पष्ट - इंद्रियों की असफलता पर 'आत्मा' ही
इस 'ज्ञान' में समर्थ हो सकता है+ इस ज्ञान के लिए आत्मा,
बुद्धि के सहारे अध्यात्म विद्या के शरण में - 'उमा' अध्यात्मविद्या
या अन्तर्मुखी बुद्धि की प्रतिनिधि - इसी से ब्रह्म के सच्चे स्वरूप
का ज्ञान - तभी आत्मा ब्रह्म की सच्ची अनुभूति को पहचान
सकती है।

CLASSM

Date ____
Page ____

महाविद्यालय का नाम :- D. B. F. Dayanand College of Arts & Science, Solapur - 413002 (Maharashtra)

नाम :- Swapnil. Rampure.

:- BA 2nd year (मौखिक परीक्षा)

★ पुनर्विवाह और नियोग का अन्तर :

1) जैसे विवाह करने में कन्या अपने पति का घर छोड़, पति के घर को प्राप्त होती है और पिता से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता एवं ऐसी नियुक्त स्त्री को पूर्व पति के घर के साथ नहीं होती। विधवा स्त्री उसी विवाहित पति के घर रहती है, नियोगी के घर नहीं।

2) उस विधवा स्त्री के लड़के उसी विवाहित पति के दायभागी होते हैं। वे वीर्यदाता के पुत्र नहीं कहलाते, न उसका गोत्र होता है न उसका उन लड़कों पर कोई स्वत्व होता है। वे मृतपति के पुत्र माने जाते हैं, उसी का गोत्र रहता है और उसी के पदार्थ के दायभागी होकर उसी घर में रहते हैं।

3) विवाहित स्त्री-पुरुष को परस्पर सेवा और पालन करना कर्तव्य है। नियुक्त स्त्री-पुरुष का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता।

4) विवाहित स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मरण पर्यन्त रहता है जबकि नियुक्त स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कार्य के बाद छूट जाता है।

5) विवाहित स्त्री-पुरुष आपस में गृहकार्य की सिद्धि करने में यत्न किया करते हैं जबकि नियुक्त स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर के काम किया करते हैं।

प्रश्न :- नियोग में क्या क्या बात होनी चाहिए?

उत्तर :- जैसी प्रसिद्धि से विवाह होता है वैसी ही प्रसिद्धि से नियोग होता है। जिस प्रकार विवाह में भद्र पुरुषों की अनुमति और कन्या वर की प्रसन्नता अपेक्षित है वैसे नियोग में भी। जब स्त्री-पुरुष का नियोग होना हो तब अपने कुटुम्ब में पुरुष स्त्रियों के सामने प्रकट करें कि हम दोनों यह नियोग सन्तानोत्पत्ति के लिए कर रहे हैं। नियोग का उद्देश्य पूरा हो जाने पर हम संयोग ना करेंगे.

दयानंद कला व शास्त्र महाविद्यालय,
सोलापुर

शैक्षणिक वर्ष - 2020-21.

शिवराज प्रकाश कोळी

बी. ए. - II

नैतिक परीक्षा.

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्य कृत:।
ऊरु तदस्य यद्वैश्य पदभ्या शूद्रोऽ अजायत॥

इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख क्षत्रिय बाहु वैश्य करउ और शूद्र पैरों से उत्पन्न हुआ है। अपितु यह है कि इस मानव समाज को यदि एक शरीर रूप में जाना जाये तो उसमें ब्राह्मण मुख स्थानीय है क्षत्रिय बाहु स्थानीय है वैश्य उरु स्थानीय है और शूद्र उसके पांव है। जैसे मुख अब अंगों में श्रेष्ठ है वैसे ही शिक्षा और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्य जाति में ब्राह्मण उत्तम कहाता है। बल, प्रधान आयोगिक और रक्षा के लेती होने से क्षत्रियों को बाहु का स्थान दिया गया है। जिस प्रकार शरीर को भोजन और [illegible] का [illegible] व पोषण कर [illegible] [illegible] रक्त आदि को सारे शरीर में [illegible] [illegible] है उसी प्रकार कृषि और वाणिज्य के [illegible] से समाज का भरण पोषण करने वाला [illegible] [illegible] कहलाता है और जैसे शरीर की स्थिति व [illegible] पैरों के [illegible] है वैसे ही अपनी सेवा द्वारा समस्त समाज को [illegible] और [illegible] वाला वर्ग शूद्र कहलाता है।

वर्णों के गुण तथा आजीविक कर्म

मनुस्मृति, [illegible] गीता में इन चारों वर्णों के गुण तथा [illegible] का [illegible] हुआ है। उसका सार इस प्रकार है –

[illegible] पढ़ना – पढ़ाना, यज्ञ करना – कराना, [illegible] और लेना ब्राह्मण के कर्म हैं। [illegible] [illegible] मन का [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और आस्तिकता [illegible] [illegible] [illegible] स्वाभाविक [illegible] है। प्रजा की रक्षा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और विषयों में [illegible] [illegible] क्षत्रिय के कर्म है।

शौर्य, तेज, धैर्य, [illegible] युद्ध में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] प्रजाओं की रक्षा [illegible] [illegible]

- कृषी तो वैश्य के व्यवसाय या कर्म है।

गीता के अनुसार भी कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं। प्रभु ने शूद्रों के लिए एक ही कर्म का आदेश दिया है और वह है इन तीनों (ब्राहमण, क्षत्रिय वैश्य वर्णों की प्रसन्नता पूर्वक सेवा करना।

X X

दयानंद महाविद्यालय, सोलापूर
नैतिक परीक्षा (2020-21)
नाव :- प्रदिप नागेश पालम
रोल नं :- 3507 (बी.ए. II)

विवाह के प्रकार और उनके लक्षण

विवाह आठ प्रकार का होता है। एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पाँचवाँ आसुर, छठा गान्धर्व, सातवाँ राक्षस और आठवाँ पैशाच।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥
मनु (3-21)

इन विवाहों की यह व्यवस्था है कि वर कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान धार्मिक और सुशील हों, उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना 'ब्राह्म' कहाता है। विस्तृत यज्ञ करने में ऋत्विक् कर्म करते हुए जामाता को अलंकार युक्त कन्या का देना 'दैव' है। वर से कुछ ले के विवाह होना 'आर्ष' है। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के लिए होना 'प्राजापत्य' है। वर और कन्या को कुछ देकर विवाह होना 'आसुर' है। अनियम असमय किसी कारण से दोनों की इच्छा पूर्वक वर-कन्या का परस्पर संयोग होना 'गान्धर्व' है। लड़ाई करके बल पूर्वक या कपट से कन्या का ग्रहण करना 'राक्षस' है। सोते हुए अथवा मद्य पान से पागल हुई कन्या से बलात्कार संयोग करना 'पैशाच' है। इन सब विवाहों में ब्राह्म विवाह सर्वोत्कृष्ट है। दैव और प्राजापत्य, मध्यम हैं। आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट हैं। राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रष्ट है। इसलिए यही प्रयत्न करना चाहिए कि कन्या और वर का विवाह से पूर्व एकान्त में मेल न हो क्योंकि युवावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है।

विवाह संस्कार की समाप्ति के बाद से लेकर जीवन की समाप्ति तक [illegible] संस्कार [illegible] के [illegible] है। संस्कार [illegible] लेकिन [illegible] की मर्यादाएं [illegible] पूर्ण करनी है। [illegible] के पश्चात [illegible] आदि [illegible] का विधान है। [illegible] सन्तान का [illegible] नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध तथा उपनयन [illegible] के [illegible] से पहले ही [illegible] होते हैं। [illegible] का [illegible] में विवाह का [illegible] है।

Date / /

* महाविद्यालय का नाम :- द. भै. फ. दयानंद कला व शास्त्र महाविद्यालय, सोलापूर
* नाम :- अक्कलकोटे राधिका गौरीशंकर (B.A.I)
* नैतिक परीक्षा
* वर्ष :- 2020-21

☆ ईशोपनिषद में ईश्वर का स्वरूप

ईशोपनिषद का प्रथम मंत्र 'ईश' शब्द से आरम्भ होता है। 'ईश' शब्द का एक अर्थ 'ईश्वर' या 'परमात्मा' है ईश्वर शब्द से ईश्वर की सत्ता (अस्तित्व) या उसका भान होता है। यह संसार उस ईश्वर की सत्ता या भाव से परिपूर्ण है सृष्टि उसके द्वारा ही निर्मित है। इस ईश्वर के बारे में ईशोपनिषद के एक मंत्र में कहा गया है कि वह एक तत्व ऐसा है कि जो न चलते होने पर भी मन से अधिक वेगवान है। इसकी गति को कोई भी (देवता भी) नहीं समझ सके। देवता से यहाँ तात्पर्य दिव्य शक्तिवाले लोग हैं। वे भी इस तत्व को जितना समझने की कोशिश करते हैं उतना ही वह उनकी समझ से परे हो जाता है। इस ईश्वर तत्व के बारे में कहा गया है कि यह स्वयं स्थिर रहता हुआ भी अन्य तेज दौड़नेवालों से भी आगे निकल जाता है। अर्थात् हम जहाँ भी पहुचते हैं, यह वहाँ हमसे भी पहले उपस्थित दिखाई देता है। ऐसा क्यों होता है? इसका उत्तर यह है कि यह सर्वव्यापक होने से सबसे पहले किसी स्थान पर पहुचा लगता है। इसकी इसी सर्वव्यापकता तथा एकतत्वता को बताया गया है। यह ईश्वर ही परम चेतना या परमात्मा के रूप में सर्वव्याप्त है। हमारे निकट भी वही चेतना है और दूर तक भी वही व्याप्त है। वह इस तरह सर्वव्यापक होने से

उसे चलने की आवश्यकता नहीं है।

वह परमपिता परमात्मा सबका सृजक, पोषक, नियामक, प्रकाशक और संहारक है। वह सब को एक दृष्टि से देखने वाला एवं एक सच्चा द्रष्टा है। अतः परमात्मा और मनुष्य में स्थित जीवात्मा में 'आत्मा' नाम का तत्व एक ही और समान रूप से व्याप्त है। अंतर यही है कि 'परमात्मा' के रूप में वह किसी प्रकार की सीमा से बंधा नहीं होता, जबकि जीवात्मा के रूप में वह शरीरधारी प्राणियों की सीमाओं से घिरा रहता है अथवा प्रत्येक जीव मात्र में एक ही 'आत्मा' समान रूप से सर्वत्र विद्यमान है।

इस तरह जीवन के भौतिक और आत्मिक दोनों पक्षों का अथवा ज्ञान और कर्म दोनों पक्षों का ज्ञान और समन्वय से ही जीवन के रहस्य को सुलझाने में हम समर्थ हो सकते हैं। इसलिए 'विद्या' और 'अविद्या' दोनों को जानना परम आवश्यक है। दोनों में से किसी एक का ही ज्ञान हमें अंधकार में रखेगा। भौतिक जीवन की वास्तविकताओं को समझकर, हम मृत्यु के भय से मुक्त हो सकते हैं। अर्थात् हमें यह ज्ञान हो जाता है कि हर भौतिक वस्तु स्वभाव से ही नश्वर है। अतः उसके नाश की आशंका से डरने की कोई आवश्यकता नहीं रहती किंतु जब हम इस ज्ञान के साथ आत्मिक पक्ष (विद्या) के रहस्य को भी जानते हैं तब हमारे सामने मृत्यु का भय तो रहता

GOODLUCK | Page No.
Date / /

ही नहीं, बल्कि उसके भी परे स्थित परम आत्मा की उपलब्धि का द्वार भी स्वयं ही खुल जाता है। तब साधक आत्मा स्वयं को मृत्यु से परे स्थित या 'अमर' अनुभव करने लगता है। इसलिए विद्या और अविद्या अर्थात् जीवन के ग्राह्य और अग्राह्य दोनों पक्षों का ज्ञान एक साथ होना आवश्यक है। यही इसकी उपासना का फल ईशोपनिषद में बताया गया है।

GOODLUCK Page No. Date

ही नहीं, बल्कि उससे भी परे स्थित परम आत्मा की उपलब्धि का द्वार भी स्वयं ही खुल जाता है। तब साधक आत्मा स्वयं को मृत्यु से परे स्थित या 'अमर' अनुभव करने लगता है। इसलिए विद्या और अविद्या अर्थात् जीवन के ग्राह्य और अग्राह्य दोनों पक्षों का ज्ञान एक साथ होना आवश्यक है। यही उसकी उपासना का फल ईशोपनिषद में बताया गया है।

* महाविद्यालय का नाम : द. भै. प. दयानंद कला व शास्त्र महाविद्यालय, सोलापुर
* विद्यार्थिनी का नाम : चंदनगी लक्ष्मी विजयकुमार
* B.A. I - Year
* नैतिक परीक्षा, वर्ष 2020-21

प्रश्न "बादल कहाँ से उठा? किस रास्ते से आया?
बरखा की बूंदे कहती है, तुम्हे इससे क्या?
तुम अपने खेत की सिंचाई करा लो, सूखी
खेतियां हरी बना लो, रीते ताल भरवालो!"

उत्तर यह शब्द महात्मा हंसराजजीने तब
कहे, जब मोहन आश्रम, हरिद्वार में एक बार
महात्मा आनंद स्वामी (महात्मा खुशहालचंद आनंद)
ने उनसे कहा, "जीवन का क्या भरोसा है।
आप के जीवन - काल में ही यदि आप का
जीवन चरित्र तैयार हो जाय तो अच्छा होगा।"
महात्मा हंसराजजीने यह जवाब इस लिए
महात्मा आनंद स्वामी को दिया था कि उनके
मतानुसार जिस तरह वर्षा से होनेवाली खेत की
सिंचाई का महत्व है, जिससे खेत हरे - भरे
बन जाते है अथवा जो तालाब बिना वर्षा के
सुख गये है उनका भर जाना महत्वपूर्ण होता
है। बादलों के कहाँ से आने - जाने से उनको
कोई मतलब नहीं होता। इसे जानने की भी
कोई जरूरत नहीं होती। उसी तरह लोगों को
किसी व्यक्ति के जन्म समय, स्थान, परिवार के
बारे में जानकारी प्राप्त करने की ओर ध्यान
देने की जरूरत नहीं। महात्मा खुशहालचंद
(म. आनंद स्वामी) को इस बारे में उन्होंने
कहा की, "कोई बात पूछो तो बताता हूँ, कोई
प्रसंग चले तो घटना सुना दूं। कहा पैदा हुए
कब पैदा हुए, किस परिवार मे पैदा हुए इस
में जन साधारण को क्या रुचि हो सकती है
और यदि हो भी तो इससे क्या लाभ?"
और वे जीवन वृतान्त लिखने की बात टाल
जाते। महात्मा आनंद स्वामी ने सुना था कि स्वामी

दयानंद जी महास्वामी से भी जब कभी उनके जन्म स्थान और माता-पिता के बारे में पूछा जाता तो वह भी यही उत्तर देते स्वामी सर्वदानन्दजी तो उन्हे प्राय: कहा करते कि आप को क्या लाभ होगा, यदि यह बता दूँ कि मैं किस गाँव में पैदा हुआ। इससे यही बात स्पष्ट होती है कि जो महापुरुष निस्वार्थ भाव से देश, समाज, धर्म, मानव-प्राणियों के हित साधन में लगे होते है उनकी दृष्टि से वह कार्य ही महत्वपूर्ण होता है न कि उसको करनेवाले व्यक्ति अथवा उसके जन्मस्थान, समय, परिवार आदि बात।

महात्मा हंसराज में भी अपने कार्य के प्रति यही भाव था इसलिए वे अपने बारे में कुछ लिखकर कार्य से अधिक महत्व व्यक्ति या उसके करने वाले को देना ठीक नहीं मानते थे।

किसी महापुरुष के निजी जीवन के बारे में जानने की उत्सुकता साधारण लोगों या उनके अनुयायियों में होती है। उसका कारण यह है कि वे जानना चाहते है कि ऐसे महापुरुष को जन्म देने का सौभाग्य किस पवित्र भूमि को प्राप्त हुआ है ऐसी दिव्य विभूति को अपनी कोख से जन्म देनेवाली यह कौनसी आदर्श माता है किन्तु महापुरुषों को अपने बारे में लोगों को जानकारी देने में कोई रुचि नहीं होती। वे नाम के भूखे नहीं होते न ही इसी बहाने कोई गुरुडम फैलाना चाहते है। इसी बहाने वे लोकोपयोगी कार्य करनेवाले लोगों के सामने एक मिसाल कायम करना चाहते है। महात्मा हंसराज के इन उद्गारों से उनके स्वभाव एवं चरित्र का एक अत्यन उज्वल पहलु हमारे सामने आता है।

दयानंद कला और शास्त्र महाविद्यालय,
सोलापूर

शैक्षणिक वर्ष - 2020-21.

कु. विराजदार अंबिका लक्कप्पा

बी. ए. I

नैतिक परीक्षा.

हंसराज के अर्जुन बाल्य काल संबंधी जीवन पर प्रकाश डालें।

महात्मा हंसराज के बचपन अथवा अंतिम दिन की झाँकी प्रस्तुत कर।

महात्मा हंसराज के बाल्य काल की घटना के आधार पर उनके चरित्र की विशेषता का वर्णन करें।

उत्तर- महात्मा आनंद स्वामी (श्री खुशहाल चंद) जी ने महात्मा हंसराज जी के जीवन चरित्र पर 'महात्मा हंसराज' शीर्षक पुस्तक लिखी है। इसमें उन्होंने महात्मा हंसराज के बाल्यकाल की कुछ घटनाओं का वर्णन किया है।

16 अप्रैल 1964 को महात्मा हंसराज का जन्म पंजाब प्रान्त के एक शहर होशियारपुर से दो-तीन मील के अन्तर पर एक छोटा-सा ऐतिहासिक कस्बा बजवाड़ा है उसी में हुआ था। महात्मा हंसराज जी के बाल्यकाल के बारे में कुछ बुजुर्ग व्यक्तियों ने भी कुछ संस्मरण बताये हैं।

अ) एक ने बताया की बचपन में हंसराज सब का सरदार बनकर रहता था। वह कुछ लड़कों की एक टोली बना लेता और उनका कप्तान बनकर सब के साथ खेलता। इन संस्मरणों से पता चलता है कि महात्मा हंसराज में बचपन से ही नेतृत्व गुण मौजूद था।

ब) उनके नेतृत्व गुण का एक और किस्सा बहुत ही मजेदार है। - एक बार कस्बे के नन्हे बालकों की आपस में ठन गई।

बस छिड़ना ही चाहिए था ... न होगी, जो दल अधिक शेर हाथों की लड़ाई न होगी, जो दल अधिक शेर बनाये, वही जीते।" बस, मारवाड़ के स्थान ... शेरों की बड़ी लड़ी लग गयी।

2) परोपकार की भावना :- जब हंसराज प्राइमरी में पढ़ते थे तो उसकी माँ ने एक खत पढ़ने के लिए हंसराज को बुलाया। उसने खत पढ़ दिया तो उनकी माता जी ने कहा, "हंसराज! तू दूसरों के ही खत पढ़ा करता है अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देता।" तब हंसराज ने कहा, "माता जी! जितना पढ़ा है यदि वह दूसरों के काम नहीं आता तो फिर पढ़ने का काम ही क्या है।

3) बुद्धिमान छात्र :- हंसराज आरम्भ में पढ़ाई की ओर बहुत कम ध्यान देते थे। किन्तु जब उन्हें स्कूल भेज दिया गया तो, पढ़ाई में इतने चमके कि बाकी बच्चे उनसे पिछड़ गये। हंसराज जो कुछ केवल स्कूल में ही। घर आकर वे पुस्तक को हाथ भी नहीं लगाते, फिर भी श्रेणी में हमेशा सर्वप्रथम रहते।

4) श्रद्धावान :- हंसराज बचपन से ही संध्या बड़े चाव से करते थे। हंसराज के पूज्य पिता हमेशा साधु-संतों की संगति में रहा करते थे और हंसराज भी अपने पिता के साथ रहा करते थे। फलतः उनके मन में बचपन से ही प्रभु भक्ति का बीज आरोपित हो गया।

5) निडर धर्म प्रेमी हंसराज :- हंसराज जब स्कूल में पढ़ते थे। स्कूल के मुख्याध्यापक ईसाई थे। वह मिशन स्कूल था। उस में प्रायः हिंदू धर्म ग्रंथों और हिंदू जाति का मजाक उड़ाया जाता था।

एक बार उस मिशन स्कूल के मुख्याध्यापक ने वैदिक धर्म और हिंदू सभ्यता पर बहुत अनर्गल एवं बुरे मजाक किये। उस समय हंसराज नवमी कक्षा में पढ़ते थे। उनको मुख्याध्यापक का यह व्यवहार असहनीय हुआ और उन्होंने मुख्याध्यापक को कहा कि प्राचीन आर्य केवल एक ईश्वर के उपासक थे और उन्होंने अपने कथन की पुष्टि में कई उदाहरण दे दिये, साथ ही ईसाई मत पर आक्षेप भी कर दिये। मुख्याध्यापक हंसराज का यह साहस देखकर आग-बबूला हो उठा। उसने हंसराज पर बेंतों की बौछार की, इतना ही नहीं बल्कि कक्षा से निकाल भी दिया। किन्तु कुछ दिनों के बाद मुख्याध्यापक को अपने व्यवहार का पछतावा हुआ और उन्होंने हंसराज को फिर से स्कूल में दाखिल कर लिया। तभी हंसराज के मन में यह बात घर कर गई कि हिंदुओं की कोई अपनी शिक्षा संस्था होनी चाहिए। जिसमें वे सम्मानपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर सके।

इस तरह हम देखते है कि महात्मा हंसराज का बाल्य काल भी असाधारण घटनाओं भरा था। उनके चारित्र में बचपन से ही महापुरुष के लक्षण नजर आ रहे थे।

☆ महाविद्यालय का नाम : द. भै. फु. दयानंद कला व शास्त्र महाविद्यालय, सोलापूर

☆ नाम :- हनमाने प्रांजली शिवलिंगप्पा (बी.ए.I)

☆ नैतिक परीक्षा

☆ वर्ष :- 2020-21

प्रश्न: ईशोपनिषद में विद्या और अविद्या की उपासना से क्या अभिप्राय है?

ईशोपनिषद के 9, 10 और 11 वे मंत्रों में विद्या और अविद्या के बारे में बताया गया है। इन मंत्रों में कहा गया है कि जो लोग विद्या की उपासना करते है, वह घुन अंधकार में प्रवेश करते है, जो केवल विद्या में लगे रहते है, वह उससे भी गहरे अंधकार में प्रवेश करते हैं। इन दोनों के फल भिन्न-भिन्न होने के बात तत्वज्ञानियों ने बताई है और अंत में विद्या और अविद्या दोनों को जो एक साथ जानता है, वह अविद्या की सहायता से मृत्यु को तरकर विद्या के द्वारा अमृत को प्राप्त होता है। इन मंत्रों के आशय को समझने के लिए आवश्यक है कि विद्या और अविद्या के अर्थ को समझ ले। विद्या का अर्थ है - ब्रह्मविद्या, आत्मा उन्नति संबंधी बातें, आत्मविद्या, अध्यात्म विद्या। जो बातें आत्मिक उन्नति में सहायक होती है, वह निःश्रेयस कहलाती है। इसका एक अर्थ ज्ञान भी लिया जा सकता है। अविद्या का अर्थ है - न जानने योग्य बातें अथवा सांसारिक उन्नति संबंधी बातें, कर्म या कर्मकांड प्रेयस इत्यादी। विद्या और अविद्या की उपासना के क्या परिणाम है या इससे क्या अभिप्राय है, इस और ध्यान दें। जो बातें हमारी आत्मिक उन्नति में सहायक नहीं होती, उन्हें अविद्या कहा जाता है। जो बातें आत्मिक उन्नति में सहायक होती है, वह निःश्रेयस कहलाती है। किंतु केवल आत्मिक उन्नति ही जीवन के लिए पर्याप्त नहीं है। जीवन की अपनी भौतिक आवश्यकताएँ भी है, भौतिक संपन्नता का ज्ञान अभी ~~आवश्यक~~ है अत्यावश्यक है। इसी ज्ञान को सामान्यतः अविद्या नाम दिया जाता है। इस अविद्या अथवा प्रकृति विद्या से ऐश्वर्य बढ़ता है। सांसारिक उन्नति होती है। भौतिक विज्ञान के आधार पर अब मनुष्य चंद्रमा तक भी पहुँच चुका है, मनुष्य ने भौतिक विज्ञान की सहायता से सांसारिक, शारीरिक

सुख सुविधा के हजारों [illegible] जुटा लिए हैं। जीवन
के हर क्षेत्र में मनुष्य ने अभूतपूर्व प्रगति की है, ऐसा
दिखाई देता है। किंतु इन सबके होते हुए क्या
मनुष्य सही अर्थों में सुखी दिखाई देता है या उसकी
परेशानियों का, दुःखों की समस्याओं का अंत हुआ है।
शिक्षा क्षेत्र एवं शिक्षा के साधन, शिक्षा संस्थाएँ बढ़
रही हैं, परंतु बुद्धिमत्ता नहीं बढ़ रही है। चरित्र और
सदाचार का भीषण पतन हो रहा है। न्यायालयों,
जेलों, पुलिस कर्मियों की संख्या बढ़ रही है। किंतु
अपराधियों की अपराधों की संख्या कम नहीं हुई है।